ISSN: 2347-2723 IMPACT FACTOR : 3.3754(UIF) VOLUME - 5 | ISSUE - 1 | AUGUST - 2017

REVIEW OF LITERATURE

गिरीराज किशोर के 'परिशिष्ट' में दलित चेतना

प्रा. भाऊसाहेब संपत गायकवाड
श्रीगोंदा माध्य व उच्च माध्यमिक विद्यालय, श्रीगोंदा, तहसिल, श्रीगोंदा, जिला अहमदनगर, महाराष्ट्र.

प्रस्तावना :

सन् १९६० के बाद देश की समसामायिक स्थितियाँ सभी दृष्टियों से विचित्र रहीं। इन जटिलतम स्थितियों ने समकालीन साहित्य को काफी मात्रा में प्रभावित किया। इस समकालीन कथा साहित्य के एक सशक्त एवं प्रतिभा संपन्न रचनाकार के रूप में गिरिराज किशोर का अपना अलग स्थान है। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व की तरह उनका कृतित्व भी वैविध्यपूर्ण रहा है। बीसवीं शती के अंतिम चार दशकों से विविध विधाओं एवं विषयों पर अनवरत लेखनकार्य करनेवाले गिरिराज किशोर ने लगभग चालीस से अधिक मौलिक रचनाओं का निर्माण किया है।

संघर्ष एवं लेखन को अपना धर्म माननेवाले गिरिराज किशोर भविष्य के प्रति आस्थावान हैं। वे भारतीय संस्कृति के अनुगामी हैं। सत्य के आकांक्षी एवं गांधीवाद से प्रभावित होने के कारण अन्याय के विरूद्ध बेचैन रहते हैं। उनकी दृष्टि मानवीय एवं व्यापक संदर्भो के साथ जुड़ी हुई है। अत: अपने पात्रों द्वारा वे नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठापना करते हैं। उनमें न औपचारिकता है न आडंबर, वे जो है उसे वास्तविक रूप में रखना चाहते हैं। कानपुर की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्था आई.आई.टी. में फैली बुराइयों की पोल खोलने का जो कार्य उन्होंने अपने 'परिशिष्ट' उपन्यास द्वारा किया है, वह निश्चय ही महत्वपूर्ण है।

जब से सृष्टि का सृजन हुआ है तब से लेकर आज तक हमारे समाज में दो वर्ग उभर कर सामने आये हैं। एक शासक वर्ग और दूसरा है शोषित वर्ग। शासक वर्ग के पास आज पैसा है, संपत्ति है, उन्हीं के हाथों में वास्तविक सत्ता है। ये लोग इसका सद्भावना से उपयोग करने के बजाय अपनी ही रोटी पर घी और मक्खन उँडेलने का काम कर रहे हैं। दूसरा शोषित वर्ग है, जिसे शक्तिहीन, अर्थहीन एवं मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। यह वर्ग सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ा हुआ है। इसे स्वाभिमान, समाज और चेतना से वंचित रखा गया है। सदियों से लेकर आज तक मानव-दानव, नर-नारी, एक ही जाति, धर्म, लिंग, प्रदेश, प्रांत, राष्ट्र, राजनीति, शिक्षा संस्थाएँ, धरती से स्वर्ग तक, शूद्र से लेकर ब्राह्मण तक यही व्यवस्था विद्यमान रही है, जो आज भी किसी न किसी रूप में दर्शन दे जाती है।

आजकल साहित्य में दलित चेतना या दलित चेतना साहित्य पर काफी गंभीरता से विचार-विमर्श हो रहा है। इसी धागे को पकड़कर गिरिराज किशोर ने 'परिशिष्ट' तथा 'यथा-प्रस्तावित' उपन्यासों में दलित चेतना का अध्ययन किया जा रहा है। गिरिराज किशोर जी के जीवन परिचय से ज्ञात होता है कि उन्होंने दलितों को निकट से देखा है। उनकी समस्याओं को जाना है। आई.आई.टी. क्षेत्र का दलित जीवन उनके उपन्यासों में उभरकर सामने आया है। अत: स्पष्ट है कि उन्होंने दलित जीवन की अभिव्यक्ति मात्र कल्पनाओं के आधार पर नहीं की है।

भारत में ५०-६० साल पूर्व से 'दलित' शब्द का प्रयोग हो रहा है और तभी से इस शब्द को लेकर तथा इस शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हो चुके हैं।

दलित शब्द की व्युत्पति -

प्रारंभ में ही 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर उसका सही अर्थ तथा वास्तविक व्युत्पत्ति को जान लेना अनिवार्य है। 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातू 'दल' से हुई है। अत: इस शब्द के संदर्भ में विभिन्न शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ दिए गये हैं। जैसे...

१. दल = (अक) विकसना, फटना, खंडित होना, द्विधा होना।
दल = (सक) चूर्ण करना, टुकड़े करना, विदारना

दल = (नपु) सैन्य, लश्कर, पत्र पत्ती।[१]

२. दल = दलति, दलित
दलित = टू वर्स्ट, ओपन, स्प्लिट।[२]

'दलित हृदयं गाठोदयोगं द्विदा तुज विदयते।'
(वेदनाओं के कारण हृदय के टुकड़े होते है, नाश नहीं)
दलित = पी. पी. ब्रोकन, टार्न, ब्रर्स्ट, रेनट, स्पिलट।

अतः स्पष्ट है कि दलित शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति विभिन्न शब्दकोशों में विभिन्न रूपों में प्राप्त होती है। शब्दकोशों में प्राप्त 'दलित' शब्द का अर्थ देखने के बाद प्रस्तुत शब्द भारत में कब से प्रयुक्त होने लगा, इस बात से अवगत होना आवश्यक है।

'दलित' शब्द का प्रयोग सन् १९३३ के दरमियान हुआ। उस समय की सरकार ने जो जातीय निर्णय लिया था, उसमें 'डिप्रेस्ड क्लासेस' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है 'पददलित'। वास्तव में पददलित शब्द 'दलित' शब्द के लिए ही पर्यायवादी शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसी समय भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ और इस विचारधारा के अन्तर्गत आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से दबा हुआ और इस वर्ग को ही 'दलित वर्ग' के रूप में देखा गया। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी से ही भारत में दलित शब्द का प्रयोग होता रहा है।

'दलित' शब्द आधुनिक (५०-६० वर्ष पूर्व का) है लेकिन 'दलितपन' प्राचीन है। अतः प्राचीन साहित्य में शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। जबकि ये सभी शब्द 'दलित' शब्द के ही पुरखे हैं। यहाँ इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि 'अस्पृश्य' शब्द का अर्थ होता है- ''स्पर्श करने के लिए अपात्र'। इसी कारण प्रस्तुत शब्द घृणास्पद हो गया। अतः इस शब्द के बदले कुछ विचारकों ने 'अस्पृश्य' पंचम हरिजन तथा बहिष्कृत जैसे शब्दों का प्रयोग किया लेकिन ये शब्द भी 'दलित' शब्द के ही बदले हुए रूप हैं।"[३]

भारतीय वर्ण-व्यवस्था में शूद्रों को चतुर्थ श्रेणी में रखा गया है। लेकिन सभी शूद्रों को अस्पृश्य नहीं माना गया। इसके विपरित कहीं-कहीं उच्च वर्गीय भी शूद्र माने गये हैं। हिन्दू लॉ के आधार पर बंगाल के कश्यप भी शूद्र हैं। इतना ही नहीं बल्कि छत्रपति शिवाजी महाराज के कुल के तंजोर (तंजावर) के राजा भी शूद्र माने गये हैं। इससे पता चलता है कि जो शूद्र थे वे हर बार अस्पृश्य नहीं कहलाए।

२. दलित चेतना का अर्थ-

'दलित चेतना' विषय का प्रारंभ करते हुए उसकी पूर्व भूमिका के रूप में 'चेतना' शब्द का अर्थ हमें देखना चाहिए।

'चेतना' शब्द का संबंध मनोविज्ञान से है। मनोविज्ञान के अनुसार- "मानव की प्रमुख विशेषता चेतना है अर्थात् वस्तुओं, विषयों तथा व्यवहारों का ज्ञान, चेतना स्त्रीलिंग शब्द है । चेतना शब्द का संबंध संस्कृत के मूल शब्द 'चित्त' या चेतस से है। इस शब्द का संदर्भ चेतन से है। चेतनामय का अर्थ होता है जिसमें जीवन है।"[४]

गुजराती जोड़णी कोश के अनुसार, "चेतना का अर्थ 'समझ' या 'समझ शक्ति' भी होता है 'चेत मच्छंदर गोरख आया' वाली प्रचलित उक्ति में भी 'सभान' का अर्थ प्रयुक्त है। चेतना शब्द का संदर्भ चित्त एवं मानस है। 'चित्' शब्द का अर्थ है विचार, बुद्धि, समझ, अंतःकरण ज्ञान, चैतन्य, सुधबुध, समझ डहापण।"[५]

३. दलित चेतना-

दलित चेतना शब्द में दो शब्द हैं- दलित और चेतना। दलित शब्द जाति वाचक नहीं है किन्तु समाज एवं समूह का बोध होता है अतः दलित चेतना सामूहिक चेतना के अंतर्गत आती है। दलित चेतना से हमारा तात्पर्य है-

- दलितों का अपने अस्तित्व के प्रति एहसास अथवा अनुभूति।
- दलितों का अपने अधिकारों के प्रति एहसास अर्थात चेतना।
- समाज में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका की समझ।

प्राध्यापक शरदचंद्र मुक्तिबोध - "दलित साहित्य चेतना को 'मूलगर्भ' कहते हैं।"[६]

दलित चेतना मानव केन्द्रित है। अर्थात् कोई वर्ग, समाज या देश प्रांत को लक्ष्य नहीं बनाती इस जागृति एवं परिवर्तन में समग्र मानव जाति का श्रेय निहित है। दलित साहित्यकार श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का कहना है,- "जो दलितों की सांस्कृतिक ऐतिहासिक सामाजिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ती है वही दलित चेतना है। दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित-सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो उसकी चेतना यानी दलित चेतना।"[७] युग-युग से पीड़ित पशु से भी लांछित जिन्दगी जीने वाले दलित को अपने मनुष्य होने का अहसास होते ही अपनी आंतरिक तथा बाह्य शक्ति का भी ज्ञान हो जाता है, यही ज्ञान दलित चेतना है।

दलित चेतना सत्य, न्याय और नीति के विजय की चेतना है। आज की दलित सर्जक चेतना मानवद्रोही एवं धर्मद्रोही ब्राह्मणवादी कठोर अनुभवों से जन्मी है। दलित चेतना अर्थात् अन्याय के विरूद्ध आक्रोश। अत्याचार का विरोध, परंपरा से विद्रोह तथा सांप्रत समाज की विषमताओं से जन्मी स्वनुभूती है। जिसमें दलित, पीड़ित शोषित जन की यातनाएँ हैं, वेदना है, व्यथा है, संघर्ष है, सामाजिक उत्कर्ष की

प्रक्रिया एवं नूतन क्रांति का बीजारोपण है। दलित साहित्य मनुष्य को केंद्र बनाता है। मनुष्य को महानता प्रदान करता है। इस दलित चेतना के गर्भ में 'वसुधैव कुटुम्बमकम सबै भूमि गोपाल की' अथवा विश्वबंधुत्व की भावना निहित है।

गद्य विधाओं में उपन्यास एक यथार्थवादी विधा है। मनुष्य के वास्तविक जीवन में घटित घटनाओं, भाव-भावनाओं एवं समसामायिक समस्याओं का जितना यथार्थ अंकन उपन्यास में होता है, उतना किसी अन्य विधा में नहीं हो पाता। यही कारण है कि साहित्य को 'समाज का दर्पण' कहा जाता है तो उपन्यास को मनुष्य जीवन का।

बीसवीं शती के अंतिम चार दशकों में अनवरत लेखन कार्य करनेवाले उपन्यासकार के रूप में गिरिराज किशोर की अलग ख्याति है। उन्होंने अपने सेवाकाल में विविध पदों पर काम करते समय निजी जीवन से संबंधित विविध अनुभवों को उपन्यासों द्वारा सार्थक अभिव्यक्ति दी है।

४. 'परिशिष्ट' में दलित चेतना-

बरसों से सवर्णों द्वारा दलित एवं पीड़ित जातियों का सामाजिक एवं आर्थिक शोषण होता रहा है। सवर्णों में पिछड़ी जातियों के प्रति जो द्वेष भावना है, जो उपेक्षावाली मानसिकता है वह स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी नहीं बदली है। अनुसूचित जाति के छात्रों को अपने पिछड़ेपन के कारण अनेक त्रासद स्थितियों से गुजरना पड़ता है। इसका अत्यंत जीवंत और प्रामाणिक चित्रण 'परिशिष्ट' उपन्यास में मिलता है।

उपन्यास का कथानक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त उच्चस्तरीय शिक्षा संस्थान आई.आई.टी. कानपुर से संबंधित है। स्वयं गिरिराज किशोर वहाँ एक अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे हैं। अत: लेखक अपने भोगे हुए यथार्थ को इसमें अंकित करते हैं। पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं- "इस उपन्यास को लिखने की बात पिछले कई वर्षों से दिमाग में पक रही थी। लेकिन जब तक मनुष्य स्वयं नहीं भोगता, तब तक बता भी नहीं सकता। पिछले चार-पाँच वर्षों के दौरान 'अनुसूचित' होने की मानसिकता के प्रति संवेदना का निर्माण हो जाने पर कलम उठाने का साहस हुआ।"[८]

"इस कथा के माध्यम से गिरिराज किशोर ने आई.आई.टी. जैसे उच्च तकनीकी संस्थानों में हरिजन छात्रों के प्रति सवर्ण छात्रों के पाशविक व्यवहार का बड़ा भयावह चित्र उपस्थित किया है। गिरिराज किशोर की दृष्टि उस मानसिकता को पकड़ने की रही है जो आज व्यापक स्तर पर शिक्षण संस्थाओं में ही नहीं, बल्कि हमारे सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में भी धुन की तरह लग गई है। हमारे सामाजिक यथार्थ का यह चित्रण भी भयावह हो लेकिन है यह सच्चाई।"[९]

उपन्यास का प्रारंभ एक फैक्ट्री में सुपरवाइजर के पद पर काम करनेवाले बावनराम जैसे निम्नवर्गीय व्यक्ति की अपने पुत्र अनुकूल को इंजिनियर बनाने की बलवती इच्छा से होता है। आई.आई.टी. जैसे उच्चस्तरीय संस्थान में प्रवेश दिलाने हेतू अपने विभाग के एम.पी. से शिफारिश कराने के लिए उनका राजधानी दिल्ली चला जाना, उन लोगों द्वारा कई बार अपमानित होना, कुछ दिनों बाद आई.आई.टी. में प्रवेश की सूचना मिलना, संस्थान में प्रवेश लेने पर सवर्णों द्वारा दलित छात्रों का दमन शुरू होना, छात्रों की मारपीट में अनुकूल का पाँव टूटना, मोहन की हत्या का रामउजागर के मन पर गहरा आघात होना,
परिणाम स्वरुप एक वर्ष का अवकाश लेकर गाँव चला जाना, रिसर्च फेलो नीलम्मा की प्रेरणा से उनका संस्थान लौट आना, नीलम्मा का अचानक गाँव चला जाना आदि घटनाओं के साथ कथा का विकास होता है। रामउजागर का अवकाश समाप्त कर पुन: प्रवेश पाने का मामला एस.यू.जी.जी. (सीनेट अंडर ग्रेज्युएट कमेटी) तक चला जाता है। उसमें रामउजागर को अनुमति नहीं मिलती है। अंतत: सभी दृष्टियों से असहाय पाकर अपने बापू (पिता) अनुकूल और नीलम्मा को पत्र लिख कर उसके आत्मत्याग करने के साथ ही कथा चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। नीलम्मा तथा प्रोफेसर मलकानी राजधानी तक जाकर रामउजागर की मृत्यु की जाँच करना चाहते हैं। सरकार की ओर से नियुक्त जाँच कमेटी की रिपोर्ट जनरल बॉडी की मीटिंग में रखी जाती है। अंत में, परिशिष्ट एक में जाँच-रिपोर्ट का व्यंग्योक्तियों के साथ खुलासा और परिशिष्ट दो में जाँच अधिकारी के नाम रामउजागर के पिता सुबरन चौधरी के पत्र के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

उपन्यास की मुख्य कथा नायक अनुकूल से संबंधित है। इस कथा के साथ-साथ इसमें अनेक गौण कथाएँ भी जुड़ी हुई है। इन कथाओं में मोहन, रामउजागर, बावनराम, खन्ना, रिसर्च फेलो नीलम्मा, प्रोफेसर मलकानी, दिनेक, राजू, डीन, सुबरन चौधरी, किसन, जाँच अधिकारी आदि चरित्रों की अनेक कथाएँ आती है। ये कथाएँ मुख्य कथा को विकसित करने के लिए परिवेश निर्माण एवं चरित्रोद्‌घाटन करने में मदद करती हैं।

इस प्रकार समकालीन कथा-साहित्य की तुलना में यह कथानक अधिक यथार्थ, नवीन, ताजगी से युक्त एवं स्वाभाविक है।

५.परिशिष्ट: चरित्रों का दलन-

'परिशिष्ट' छात्र जीवन पर आधारित यथार्थवादी उपन्यास है। इसमें पात्रों की बहुलता है। 'अनुकूल' इस उपन्यास का नायक है। मोहन, रामउजागर, बावजराम, सुबरन चौधरी, खन्ना, दिनेश, नीलम्मा, प्रोफेसर मलकानी, वाल्मीकि आदि गौण पात्र हैं। गौण पात्रों में खन्ना, नीलम्मा, रामउजागर का अपना अलग महत्व है। 'परिशिष्ट' का अनुकूल, नीलम्मा एवं रामउजागर सवर्णों के अमानुषिक अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करते हैं।

५.१) अनुकूल-

अनुकूल इस उपन्यास का नायक है। वह एक हरिजन छात्र है। फैक्ट्री में काम करनेवाले सुपरवाइजर का पुत्र है। अपनी बिरादरी कारीगरों के बच्चों में दसवीं पास करनेवाला वह पहला लड़का है। अपनी उम्र के हिसाब से उसका कद लंबा, काठी अच्छी, आँखे बड़ी है। देखने में वह बांभन-ठाकुर का-सा लगता है।

अपने इलाके के एम्.पी. की शिफारिश पर उसे आरक्षण के लाभ से आई.आई.टी. में प्रवेश मिल जाता है। वहाँ छात्रों की मारपीट में उसके पैर की हड्डी टूट जाती है। इस घटना से न वह विचलित होता है न डरकर अपने घर लौट आता है, बल्कि अंत तक भोक्ता बन कर बड़े धैर्य के साथ निरंतर संघर्ष करता रहता है। पिता द्वारा संस्थान से बुलाने पर वह कहता है कि घर वापिस लौटकर अपने को सुरक्षित महसूस करने के स्थान पर हम और अधिक आरक्षित हो जाएँगे। यह वक्त यहीं बने रहने का है। अपने अंदर खुदे भय के इन कुँओं से अपने को निकाल कर उन्हें पाटने देने का है। "अगर मैं यहाँ सुरक्षित नहीं रह सकता तो वहाँ भी नहीं रह सकता। यही वह खेत है, जहाँ हमें अपने आप को खाद रूप में खपा देना है।"[१०]

वह जितना संघर्षशील है, उतना ही सहनशील है। असम्मान यातना को सहन करना ही मानों उसकी जिंदगी है। उसकी दृष्टि से सहनशीलता मनुष्य को मृत्यु के सामने भी ताल ठोंक कर खड़ा कर देती है। इसी कारण खन्ना तथा उसके सहयोगियों द्वारा मारपीट में उसकी टाँग टूट जाने पर भी उसे वह चुपचाप सहन करता है। उसका कहना है कि हमें तब तक बर्दाश्त करना चाहिए जब तक उनके अत्याचार की सीमा का अंत नहीं हो जाता। यह तय हो जाने के बाद स्थिति स्वयं काबू में आ जाएगी। नीलम्मा और रामउजागर भी उसकी सहनशीलनता की प्रशंसा करते हैं।

अनुकूल की व्यक्तित्व प्रेरक है, अनेक गुणों से युक्त है। उससे रामउजागर काफी प्रभावित है। रामउजागर के निम्न कथन से इसका बोध स्पष्ट होता है- "तुम्हारी बात कहूँ तो तुम में अपनी परिस्थितियों के प्रति घृणा न होकर, बदलने की बेचैनी है। तुम्हारे अंदर चिंगारी का-सा विद्रोह न होकर एक लंबे संघर्ष का धैर्य है। तुम अंदर से बदलने को बदलना समझते हो, मैं बाहरी परिवर्तन को परिवर्तन समझता था। मैं हर शुरूआत दूसरों के माध्यम से करना चाहता था, तुमने अपने आपसे की है। तुम पर्वत-खंड हो।"[११] उपन्यास नायक के ये गुण उसके प्रेरणादायी एवं बेजोड़ व्यक्तित्व के परिचायक हैं। नकारात्मक स्थितियाँ और असहनीय दलन के बीच वह अपने व्यक्तित्व को मांजता है।

२) नीलम्मा-

'नीलम्मा' इस उपन्यास का एक सशक्त नारी पात्र है। वह एक दक्षिणी युवती है। आई.आई.टी. की शोध छात्रा है। होशियार एवं खूबसूरत है। वह जितनी सहनशील है उतनी ही संघर्षशील भी। सवर्ण होते हुए भी दलितों के प्रति पूरी सहानुभूति रखती है। दूसरों को न केवल सही मार्ग दिखलाती है बल्कि आपत्तियों में उन्हें पूरा सहयोग भी देती है। रामउजागर के शब्दों में- "वह बड़े से बड़े हादसे हँसते-हँसते सहने की सामर्थ्य रखती है। अपने को भी सँभालती है और दूसरों को भी राह दिखाती है। कहने को वह भी सवर्ण ही है, लेकिन इन्सान होने का महत्व समझती है।"[१२]

वह एक साहसी युवती है, नारी स्वतंत्रता की समर्थक है। इसलिए हॉस्टल में लगाए गए गैर कानूनी नियम के खिलाफ़ लड़कियों के सहयोग से आवाज़ उठाती है।

३) खन्ना-

खन्ना कमिशनर का बेटा है। उच्चवर्गीय छात्रों का प्रतिनिधि पात्र है। अंग्रेजी भाषा पर उसकी प्रभुता है। आई.आई.टी. उच्च शिक्षा संस्थान का सर्वेसर्वा है। पूरी फैकल्टी उसकी जेब में रहती है। संस्थान के प्रोफेसरों से लेकर बड़े अधिकारियों तक उसकी पहुँच है। अतः सीनेट द्वारा कई बार प्रयास करने पर भी उसे संस्थान से नहीं निकाला जाता। वह जितना अहंवादी है उतना ही निडर। अतः अनुकूल को यह कहने नहीं चूकता कि हम लोगों की बराबरी के लिए वैसा ही बीज चाहिए। अछूत छात्रों को धमकाना, उन्हें अपमानिक करना उसका एक मात्र काम है। अपने दोस्तों की मदद से वह अनुकूल के पैर की हड्डी तोड़ देता है। इस प्रकार दलित छात्रों पर हमेशा अमानवीय अत्याचार करता रहता है।

४)रामउजागर-

रामउजागर एक अछूत छात्र है। वह पढ़ने में तेज है। अंग्रेजी भाषा पर उसकी प्रभुता है। वह बड़ा आत्मसम्मानी एवं संघर्षशील है। उसके सामने महात्मा गांधी, अंबेडकर का आदर्श है। अनुसूचित जाति के छात्र उसे अपना आधार समझते हैं। पुलिस की मदद से मोहन की सड़ी लाश नीचे उतरवाता है। इस घटना का उसके मन पर इतना असर होता है कि अंत में वह पागल हो जाता है। परिणाम स्वरूप उसे एक साल छुट्टी लेकर अपने घर जाना पड़ता है। नीलम्मा की प्रेरणा से वह पुनः आई.आई.टी. लौट जाता है, लेकिन सवर्णों द्वारा सभी ओर से अपमानित होकर आत्महत्या कर लेता है।

वह जितना साहसी है, उतना ही भावुक है। यही भावुकता उसके विनाश का कारण बन जाती है। नीलम्मा के शब्दों में- "राम बहादुर था- साहसी था और भावुक भी था। साहस और भावुकता कभी-कभी एक-दूसरे के आड़े आ खड़े होते हैं। उतने ही अंशों में भावुकता की आवश्यकता होती है.... जो साहस को निरंकुश न होने दे.... नपुंसक बना देनेवाली भावुकता का कोई मतलब नहीं।"[१३]

इससे स्पष्ट होता है कि किसी मनोवृत्ति की अतिवादिता मनुष्य को विनाश की ओर लेती जाती है और रामउजागर इसका उदाहरण है।

निष्कर्ष -

निष्कर्षतः कहा जा सकता है की, 'परिशिष्ट' में तथाकथित ऊँचे शिक्षा संस्थान अर्थात आई.आई.टी. में किसीतरह दाखिला लेने के पश्चात महाभयंकर, खैफनाक एवं आत्महत्या के लिए प्रवृत्त करती वहाँ की दलितों के प्रति की साजिशपूर्ण व्यवस्था एवं दलित छात्रों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष के चलते ऊँची जाति के घमंडी छात्र, दादाओं के अमानवीय साजिशपुर्ण व्यवहार के प्रतिकार के रुप में रामउजागर, अनुकूल, नीलम्मा, आशा-निराशा, पलायन दृढता की एक ऐसी कहानी है जो यथार्थ एवं विश्वसनीय बन चुकी है।

इस प्रकार दलितों के प्रति की भयावह भावनाओं को सामने रख कर उसके माध्यम से शोषण एवं जातीयता की समस्या को सुलझाना। उन्हें उचित न्याय देना, इसके लिए अविरत संघर्ष करने की प्रेरणा देना, जातिगत बंधनों से मुक्त कर मानवीय गरिमा को स्थापित करना। सवर्णों का अछूतों की ओर देखने का जो परंपरागत दृष्टिकोण है, उसमें परिवर्तन लाना, उच्च शिक्षा संस्थानों में फैली बुराइयों का पर्दाफ़ार्श करना आदि कई उद्देश्यों को सामने रख कर 'परिशिष्ट' उपन्यास का निर्माण करने में लेखक पूर्णतः सफल हो चुके हैं।

संदर्भ ग्रंथ -

१) वास्कर आनंद -'हिंदी साहित्य में दलित चेतना, पृष्ठ - १७.
२) वही, पृष्ठ - १७.
३) वही, पृष्ठ - १८.
४) वनकर नरसिंहदास - 'दलित विमर्श', पृष्ठ - ३९.
५) वही, पृष्ठ - ३९.
६) वही, पृष्ठ - ४०.
७) वही, पृष्ठ - ४१.
८) गिरिराज किशोर, 'परिशिष्ट' द्वि.सं. १९८९, भूमिका से, पृष्ठ - ५.
९) साळुंकेसुरेश चांगदेव, 'गिरिराज किशोर का उपन्यास एक अनुशीलन', पृष्ठ - १३५.
१०) गिरिराज किशोर, 'परिशिष्ट' द्वि.सं. १९८९, पृष्ठ- २९१.
११) वही, पृष्ठ - २८६.
१२) वही, पृष्ठ - १५८.

प्रा. भाऊसाहेब संपत गायकवाड
श्रीगोंदा माध्य व उच्च माध्यमिक विद्यालय, श्रीगोंदा, तहसिल, श्रीगोंदा, जिला अहमदनगर, महाराष्ट्र.